ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 74-77

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

प्रेमचंद के समय में भारत

माया

सहायक प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, जनता कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऐलनाबाद (राजस्थान), भारत

Received- 21 .10. 2021, Revised- 25 .10. 2021, Accepted - 28.10.2021 E-mail: meenaharkesh705@gmail.com

सारांशः ***प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई. को हुआ था। उनका साहित्यिक जीवन लगभग सन् 1901 ई. से प्रारम्भ होता हैं। सन् 1901 ई. से 1936 ई. का भारत प्रेमचंद की सूक्ष्म दृष्टि का केन्द्र रहा हैं। इसलिए यह आवश्यक हैं कि प्रेमचंद के समय भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर पहले विचार कर लिया जाए क्योंकि प्रेमचंद व्यक्तिवादी लेखक नही थें। उन पर उस समय की परिस्थितियों तथा समस्याओं का पूरा–पूरा प्रभाव था। किसी काल विशेष से जो दृष्टिकोण मान्यता प्राप्त करता हैं। उसका संबंध जागरूक लेखकों से बहुत निकट रहता हैं। वस्तुतः विचारक और लेखक ही अपने समय की विचारधारा के वाहक होते हैं। वे ही राष्ट्र तथा समाज को जीवन व गति प्रदान करते हैं। प्रेमचंद का युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग था। पराधीनता के कारण प्रत्येक क्षेत्र में भारत का विकास रूका हुआ था और सभी समस्याओं का निराकरण बिना स्वाधीनता प्राप्ति के संभव नही था।[1] राष्ट्रीय पराधीनता एक ग्रन्थि के समान बन गई थी। भारत की समग्र चेतना व कर्म–शक्ति ब्रिटिश सामांज्यवाद को उखाड़ फेंकने में लगी हुई थी। इसलिए सर्वप्रथम राजनैतिक भारत पर दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा।*

कुंजीभूत शब्द– साहित्यिक जीवन, राजनैतिक, राष्ट्रीय संघर्ष, पराधीनता, निराकरण, स्वाधीनता, समग्र चेतना।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में देश में निराशा का वातावरण छाया हुआ था। सन् 1857 ई. का स्वाधीनता संग्राम विफल हो चुका था। ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र अपनी पूरी गति से चल रहा था। ब्रिटिश सामांज्यवाद राजाओं, जागीरदारों व जमींदारों का अपनी रक्षा के लिए पोषण कर रहा था। भारतीय जनजीवन उसमें कोई राह न पाकर अनिश्चितता के बिहड़ प्रदेश में भटक रहा था। सन् 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ। इससे देश में एक नई हलचल उत्पन्न हुई। सन् 1901 ई. में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद एंडवर्ड प्रथम राजगद्दी पर बैठा। सन् 1885–1905 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने काफी प्रगति की और वह एक जनसंस्था के रूप में देखी जाने लगी। इस समय के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्य शांतिपूर्ण समझौतों व विश्वास के आधार पर ही हुए।

20वीं शताब्दी के प्रथम पांच वर्ष लार्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। भारत को इस दमन का सबसे बडत्रा धक्का बंग–भंग से लगा। बंगला भाषा–भाषी जनता की इच्छा के प्रतिकूल बंगाल को दो प्रांतों में बांट दिया गया। कांग्रेस ने बंग–भंग के प्रश्न को देंशव्यापी बनाकर ओदोलन शुरू कर दिया। सन् 1911 की शाही घोषणा से बंग–भंग को वापिस ले लिया गया। इसी समय भारत के राजनीतिक मंच पर सर आगा खां के दर्शन हुए। आगा खां के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने साम्प्रदायिक पृथक नेतृत्व की मांग की और इस प्रकार भारत विभाजन की नींव डाली। अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलन से भी राष्ट्रीय चेतना को नया बल मिला।

जुलाई 1914 ई. में प्रथम विश्व युद्व शुरू हो गया। इस विश्व युद्व में भारतीय सेना ने ब्रिटेन की पूरी रक्षा की। महात्मा गांधी ने सरकार को पूर्ण सहयोग दिया, लेकिन भारत की पराधीनता ज्यों की त्यों बनी रही। इसी समय अंग्रेज सरकार द्वारा रोलेट बिल 1919 को कानून बनाने के प्रयत्न किकए गए। गांधी जी इसका कड़ा विरोध किया। गांधी जी ने यह घोषणा की कि यदि रोलेट कमीशन की सिफारिशों को बिल का रूप दिया तो वे सत्याग्रह युद्व शुरू कर देगें। गांधी जी ने संपूर्ण देश का दौरा किया और अंत में यह आंदोलन छेड़ना पड़ा। सारे देश ने इस आंदोलन का साथ दिया। जगह–जगह गोलियां चली। सबसे भंयकर नरसंहार जलियांवाला बाग अमृतसर में जनरल डायर द्वारा हुआ।[2]

सबसे बड़ी दुखद बात वास्तव में यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतकों के शव और वे लोग सख्त घायल हो गए थे उन्हें सारी रात वही पड़े रहने दिया गया। वहां उन्हें रात भर न तो पीने का पानी दिया गया और न ही अन्य डॉक्टरी सहायता की गई। सितम्बर 1919 ई. में हन्टर कमीशन की नियुक्ति की घोषणा गई, जिसमें पंजाब के उपद्रवों की जांच करने के लिए कहा गया। गांधी जी सत्याग्रह स्थगित कर दिया। आगे चलकर सन 1920 ई. के असहयोग आंदोलन ने जोर पकड़ा। 28 मई 1920 ई. को हन्टर रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसके कारण सम्पूर्ण देश में रोषछा गया क्योंकि भारतीय सदस्य उस रिपोर्ट से सहमत नही थै। असहयोग आंदोलन की योजना 1 अगस्त से प्रारम्भ हुई। सम्पूर्ण देश में आंदोलनों की बाढ़ सी आ गई। असंख्य आंदोलनकारियों को जेलों में डाल दिया गया। नवम्बर 1920 ई. में प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागत का बहिष्कार किया गया। आंदोलन सफलता की सीमा तक पहुचने लगा। आदोलन में भाग लेने वाले लोगो के होंसले बुलन्द थें। असहयोग

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

आंदोलन में हिन्दु मुस्लमानों ने मिल कर संघर्ष किया। लार्ड रीडिग भी इस आंदोलन से परेशान हो उठे। असहयोग आंदोलन अहिंसात्मक था, लेकिन चौरा–चोरी के एक थाने पर लोगों ने आक्रमण कर दिया और उसे जला दिया। गांधी जी ने हिंसा देख कर आंदोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी भी इस आंदोलन के दौरान छह वर्ष के लिए जेल भेजे गए।

सन् 1922 ई. में टैक्स ना देने का आंदोलन चला, जिसमें सरकार ने बड़ी कठोरता से काम किया। सन् 1923 ई. में जेलों से रिहा हुए नेताओं ने कौंसिलों में जाने का निश्चय किया। स्वराज पार्टी का निर्माण हुआ। साइमन कमीशन का विस्तार किया गया, क्योंकि उसमें एक भी सदस्य भारतीय नही था। सन् 1927 ई. में हिन्दू–मुस्लिम दंगों को शांत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन भारत भेजा था, लेकिन कोई भी भरतीय न होने के कारण भारत ने इसे अपना अपमान समझा। जिस कारण भारत में असंतोष तेज होता गया। इसी समय कांग्रेस में नई विचारधारा आई और गांधी जी द्वारा विरोध करने पर भी पूर्ण स्वराज की घोषणा कर दी गई। सन् 1930 ई. महात्मा गांधी के नेतृत्व में नमक कानून भंग करने के लिए आंदोलन प्रारम्भ हुआ। 3 अप्रैल 1930 को दांडी पहुंच कर नमक बनाया गया। महिलाओं ने पर्दा छोड़ कर इस आंदोलन में भाग लिया। ब्रिटिश सरकार ने लाठियो व गोलियों से इस आंदोलन को दबाना चाहा, लेकिन जनता का सरकार के प्रति आक्रोश बढता ही गया। अन्त में सरकार को समझौता करना पड़ा। फलस्वरूप गांधी–इरविन समझौता सामने आया। तत्पश्चात् गांधी जी कांग्रेस के प्रतिनिधि कांन्फ्रेन्स में भाग लेने ब्रिटेन गए। गांधी जी जब भारत वापस लौटे तब देश में हालात बिगड़ें हुए थे। उस समय लॉर्ड विलिंगटन का शासन था, जो बड़ा कठोर था। संयुक्त प्रान्त के किसान लगान बंदी आंदोलन कर रहे थें। नये भारत के कानून के अनुसार, हरिजनों को हिन्दूओं से अलग करने की चेष्टा की गई। गांधी जी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्व आमरण अनशन की घोषणा कर दी। बाद में पुना समझोता हुआ और गांधी जी द्वारा व्रत तोड़ दिया गया। सन् 1935 ई. में भरतीय श्शासन विधान बना। कांग्रेस ने विधानसभा चुनावों में भाग लिया, यद्यपि कांग्रेस इससे संतुष्ट नही थी। चुनाव में कांग्रेस बहुमत वाले प्रांन्तों में शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आ गई। नया मंत्रीमंडल बनाया ही जा रहा था कि इसी बीच 8 अक्टूबर 1936 ई. को प्रेमचंद जी की मृत्यु हो गई।[3]

प्रेमचंद जी के जीवनकाल में भरत उपर्युक्त घटनाचक्रों से गुजरा था। वास्तव में प्रेमचंद का युग भारतीय स्वाधीनता संग्राम का युग था। उनके समय में देश का ये यौवन पूरे चरम पर था। एक और भरतीय नौजवान उत्साह के साथ भरत की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दमन चक्र पूरी कठोरता व निर्द्रयता के साथ चल रहा था। प्रसिद्व इतिहासकार और अर्थशास्त्री रजनी और पामदत्त 'आज का भारत' नामक ग्रन्थ में लिखतें हैं :

सन् 1914–18 के पहले विश्वयुद्व से और उसके बाद जो पूरे विश्व पर जो क्रान्ति छा गई थी। उससे सभी उपनिवेशों की तरह भारत में भी बड़ें–बड़ें परिवर्तनों का युग आरम्भ हुआ। बड़े–बड़े जन आंदोलनों से भारत में क्रांति की लहर छा गई और विश्वव्यापी आर्थिक संकट के बाद जिसका भारत पर व्यापक असर पड़ा। 1930–34 की समयावधि में जनआंदोलनों की बाढ सी आ गई। ब्रिटिश सरकार इन उठते हुए राष्ट्रीय आंदोलनों का मुकाबला बारी–बारी सुधारवादी और दमनकारी नीति के द्वारा करते थे। एक तरफ सरकार के द्वारा भविष्य में सुधार के वादे किए जाते थे वहीं दूसरी ओर वैधानिक सुधार किए जाते थे, कि जिन हाथें में ताकत होती थी वो वहीं बनी रहती थी। प्रेमचंद जी ने अपनी आंखों से भारतीय चेतना के इस उभार को देखा ही नही, बल्कि वे उस चेतना के वाहक एवं प्रसारक भी थे। व्यक्तिवादी लेखक न होने के कारण वे अपने को उपयुक्त महत्वपूर्ण घटनाकर्मों से अलग नही रख सकते थे। लेकिन उनके उपन्यास भारत के राजनीतिक जीवन का ही प्रतिनिधित्व नही करते बल्कि उनके आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलूओं पर भी दृष्टिपात करते है। वस्तुतः प्रेमचंद के उपन्यास भरत की राष्ट्रीय भावना और उसकी विविध पर भी दृष्टिपात करते है। वस्तुतः प्रेमचंद के उपन्यास भारत की राष्ट्रीय भावना और उसकी विविध ज्वलंत समस्याओं के प्रतिक हैं। वे मात्र ऐतिहासिक महत्व के उपन्यास नहीं हैं। वर्तमान जीवन अर्थनीति पर निर्भर हैं। आर्थिक संगठन का सामाजिक जीवन पर पूरा–पूरा प्रभाव पड़ता हैं। प्रेमचंद के समय में देश की आर्थिक स्थिति बड़ी भयानक थी। स्वयं प्रेमचंद का जीवन आर्थिक अभावों का जीवन था। उन्होनें गरीबी का कटु अनुभव किया था। ग्रामों और नगरों में समान रूप से उनका जीवन बीता था। हिन्दूस्तान की निर्धनता और उससे मुक्त होने का संग्राम प्रेमचंद के उपन्यासों में एक विशेष महत्व रखता हैं।

भारत की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में प्रेमचंद से पूर्व भारतेन्दू हशिचंद्र ने लिखा है:

अंगेज राज सुख सजा सबभारी। पै धन विदेश चली जात इहै अति ख्वारी।।
ताहु पे महंगी ककाल रोग विस्तारी। दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई। हा हा ! भारत की दुर्दशा न देखी जाए।।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

अंग्रेजी राज्य में भारतीय जनता के शोषण का यथार्थ चित्र हैं। इस देश की सारी सम्पति धीरे–धीरे ब्रिटेन पहुंच रही थी। भारतीय जनता बड़ी आर्थिक कठिनाइयों से जीवन जी रही थी। इस अपार निर्धनता के बीच जनता पर विभिन्न करों का बोझ लाद दिया गया था और इस प्रकार भारतीय जनता के रक्त से ब्रिटिश साम्राज्य का भव्य महल बन रहा था। हिन्दूस्तान ब्रिटिश साम्राज्य की धूरी था। यहां के व्यापार का सबसे बड़ा भाग अंग्रेजों के हाथ में था।

हिन्दूस्तान की गरीबी के संबंध में भारत के प्रसिद्व अर्थशास्त्री शाह और खंबाटा ने लिखा हैः–

हिन्दूस्तानियों की औसत आमदनी इतनी होती हैं कि तीन आदमियों की आमदनी से दो आदमियों का ही पेट भर सकता हैं। कुशल मजदूरों को छोड़ कर हिन्दूस्तान में इतनी पगार मिलती हैं कि मुश्किल से ही उनका पेट भर सकता हैं और तन ढक सकता हैं। हिन्दूस्तान में लोगों का बहुत बड़ा हिस्सा अब भी गरीबी में जिंदगी जी रहा हैं जबकि इस तरह की जिंदगी पश्चिमी देशों में हैं ही नही। लोग जिंदगी और मौत के कगार पर दिन काट रहे हैं। उद्योग धंधों के अधिकांश केन्द्रों में मजदूरों की संख्या का दो तिहाई भाग ऐसे लोगों का है जो कर्ज में डूबे हुए हैं। अधिकांश लोगों का खर्च उनकी तीन महिने की मजदूरी से भी ज्यादा हैं।[4]

प्रेमचंद के उपन्यासों में किसान वर्ग का चित्रण बड़े विस्तार से किया गया हैं। वे भारतीय गांवों और किसानों कर दशा से अत्याधिक निकट से परिचित थे। प्रेमाश्रम और गोदान किसान वर्ग के महाकाव्य माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त वरदान, सेवासदन आदि उपन्यासों में भी प्रेमचंद ने किसानों की विभिन्न समस्याओं की ओर संकेत किया हैं। भारत की अधिकांश जनता कृषि करती हैं। कृषि पर निर्भर लोगों का अनुपात 70 प्रतिशत तक जनसंख्या रिपोर्ट से देखा जा सकता हैं। वर्ष 1933 ई. के करीब भारतीय किसान और कृषि की दशा के संबंध में प्रोफेसर राधा कमल मुखर्जी अपनी पूस्तक हिन्दूस्तान में भूमि की समस्याओं में लिखते हैं। "भूमि से आजीविका चलाने वालों की संख्या इतनी बढ गई है कि खेत बिल्कुल छोटे छोटे हो गए हैं। इन छोटे खेतों में एक परिवार को भी काम नही मिलता। साथ ही जमींदार अपने पुराने सम्मानपूर्ण व्यवहार को भी नही निभाते। वे किसी तरह की दौलत पैदा नही करते। उनका काम केवल लगान वसूल करना हैं। वे ना तो खेती के लिए पूंजी देते और ना ही किसान के धंधें का संचालन करते है। इनके नीचे कांरिदों की ऐसी जमात होती हैं जो उलझी हुई भूमि व्यवस्था से पूरा फायदा उठाती हैं। इससे खेत जोतने वाले किसानों की हालत बद से बदतर होती जाती हैं।"[5]

संयुक्त प्रांत में खासतौर से बहुत बढाई गई हैं। संयुक्त प्रांत में विकट स्थिति उत्पन्न हो रही थी। संयुक्त प्रांत में अधिकांशतः जमीदारों के अधीनस्थ किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो रही थी। लगान वसूली के तरीकों में मानवता का नामोनिशान नही था। बेदखलियों व दबाव की ज्यादती से यह विपदा ओर अधिक गंभीर हो गई थी। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानों पर आंतक का साम्राज्य छा गया। उनके साथ क्रूरता पर क्रूरता होने लगी। यह विवरण वर्ष 1931 ई. की स्थिति को दृष्टि में रखकर दिया गया हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय किसान कर्ज से बुरी तरह दबा हुआ था। इस कर्ज का कारण आर्थिक माना जाता हैं जबकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सर्मथक इस कर्ज का कारण किसानों की फिजूलखर्ची को मानते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नही हैं। बंगाल मे दक्षिणी पश्चिमी वीरभूम के किसानों की कर्ज की जांच 1933 से 1938 ई. के अनुसार, यह स्पष्ट हो जाती हैं कि कर्ज का लगभग एक चौथाई भाग लगान देने के लिए लिया गया हैं। अतः कर्ज का कारण आर्थिक प्रतीत होता हैं न केवल मात्र सामाजिक कुरीतियां व अंधविश्वास ही कारण नही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद के समय में अधिकांश भारतीय समाज कर्ज के बोझ के लदा हुआ असंतोष के धुएं में सांस ले रहा था। इसका प्रमुख कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद की लूट नीति थी। अंग्रेज शासकों ने भारतीय जनता की गरीबी दूर करने के लिए कोई ठोस कदम नही उठाया बल्कि शोषण शस्त्र से ही अपना घर भरते रहे। प्रेमचंद ने भारत की इस लूट को अपनी आंखों से देखा था। उन्होनें भारतीय समाज के प्रत्येक अंग मजदूर, मध्य वर्गीय परिवार आदि की आर्थिक स्थिति को अपने उपन्यासों में चित्रित किया। तत्कालिन भारत की आर्थिक दशा का यथार्थ ज्ञान प्रेमचंद के साहित्य से होता हैं। आर्थिक समस्या का सीधा संबंध राष्ट्रीय पराधीनता से था। अतः देश को स्वाधीन करना प्रमुख प्रश्न था। प्रेमचंद ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता को प्राथमिकता दी। सामाजिक समस्याएं आर्थिक कारणों पर आधारित रहती हैं। अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने से सामाजिक ढांचा अपने आप बदलने लगता हैं। अनेक सामाजिक कुरीतियों को जन्म देने वाली दूषित अर्थव्यवस्था ही होती हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में जहां कहीं भी सामाजिक समस्या आई हैं उन सब का आधार आर्थिक ही हैं। वैश्यावृति, विधवा–विवाह, बाल–विवाह, छुआछूत, शिक्षा, ग्राम्यजीवन आदि सभी मूल रूप में आर्थिक पहलू ही हैं। हमें आगे यह देखना चाहिए कि प्रेमचंद ने आने समय के भारत का किस प्रकार प्रतिनिधित्व किया हैं।[6] वे कौन–कौन सी तत्कालीन समस्याएं थी, जिनकी युगधर्म को मानने वाला साहित्यकार उपेक्षा नही कर सकता था।

प्रेमचंद और राष्ट्रवाद– प्रेमचंद अपने लेखों के द्वारा भारत में राष्ट्रवाद को लेकर चल रही बहस में शामिल हुए।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

रवीन्द्रनाथ टैगोर मानते थे कि आधुनिक राष्ट्रवाद की भावना में संकीर्णता की भावना होती हैं। प्रेमचंद भी इसी विचार के साथ खड़े हुए थे। वे उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में राष्ट्रवाद की भूमिका की तरफदारी करते हुए भी पश्चिमी राष्ट्रवाद के आलोचक थें। वे लिखते हैं कि वर्तमान राष्ट्र यूरोप की ऊपज हैं। इसी राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद को जन्म देकर संसार में तहलका मचा रखा हैं। व्यापारिक प्रभुत्व के लिए महान युद्ध होते हैं। ये सारे अनर्थ इसलिए हो रहे हैं कि धन और भूमि की लालसा ने राष्ट्रों को अंधा सा बना दिया हैं। इस प्रभाव में उच्च और पवित्र आदर्शवाद इसी राष्ट्रवाद के आगे कुचला गया हैं।[7]

अपूर्वानंद कहते है कि प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद को कोढ कहा था। वे राष्ट्रवाद के घोर आलोचक रहे है। उन्होनें जितनी बेबाकी से उस समय लिखा, यदि आज का समय होता तो कोई लेखक ऐसा कह दे तो वह जेल में पहुंच जाए। प्रेमचंद आजादी की लड़ाई में एकजुटता के लिए राष्ट्रवाद की भूमिका को महत्व रहे थे, लेकिन आजाद भारत में ऐसा राष्ट्रवाद चाहते थे, जो गरीबों, किसानों और मजदूरों का हिमायती हो। उन्होनें लिखा कि लोकतंत्र एक दलबंदी बन कर रह गया हैं। जिसके पास धन था और जिनकी जुबान में जादू था, उन्होने जनता को सब्जसांग दिखा कर लोकतंत्र की आड़ में सारी शक्तियां अपने हाथ में कर ली। वे चाहते थे कि संसार का कल्याण तभी हो सकता हैं जब संकुचित राष्ट्रीयता विचार छोड़ कर व्यापक अंतराष्ट्रीय भाव से विचार हो। राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण व्यवस्था, जॉति–पॉति का भेदभाव तथा धार्मिक भेदभाव को समाप्त करना हैं। अपने राष्ट्र की कल्पना करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि हम जिस राष्ट्रीयता का स्वपन देख रहे हैं उसमें जन्मगत वर्ण व्यवस्था की तो गंध तक नही होगी। वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा जिसमें सभी भारतवासी होगें।[8]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र मयूर पेपरबैक्स, नोयडा ।
2. शर्मा, रामविलास : प्रेमचंद और उनका युग राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
3. बाहरी, डा. हरदेव : साहित्य कोश, वाराणसी ज्ञानमेडल लिमिटेड ।
4. सिंह, डा. बच्चन : प्रतिनिधि कहानियां, वाराणसी अनुराग प्रकाशन ।
5. तिवारी, डा. रामचंद्र : हिन्दी की गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी ।
6. व्योम, डा. जगदीश : प्रेमचंद मंशी कैसे बने सिटीजन पावर हिन्दी मासिक पत्रिका ।
7. देवी, शिवरानी : प्रेमचंद घर में आत्माराम एंड संस दिल्ली ।
8. वर्मा, निर्मल, कमल किशोर गोयनका : प्रेमचंद रचना संचयन साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

*****